सहयोग राशि – ₹ 40
वर्ष–4, अंक–6, जुलाई 2015

शैक्षिक दख़ल

शैक्षिक सरोकारों को समर्पित शिक्षकों तथा नागरिकों का साझा मंच

परिचर्चा

कैसा है, भय और शिक्षा का रिश्ता

विशेष

स्कूली बच्चों में भय,
तनाव एवं दुश्चिंता के प्रभाव :
डॉ0 केवलानंद कांडपाल

शिक्षा और भय :
डॉ0 शशांक शुक्ला

गंभीर खतरे में स्कूल :
रोहित धनकर

कहानी

जाग तुझको दूर जाना :
बिपिन कुमार शर्मा

अनुभव अपने-अपने

आकाश सारस्वत, प्रमोद दीक्षित 'मलय',
रेखा चमोली, रामकिशोर पांडेय

तथा अन्य स्थायी स्तंभ

कहीं छूट गया बचपन

मुईसेर येनिया (टर्की)

वहां उस टोकरी में पड़े हैं

मेरे बीते हुए साल

बचपन बिखरा है खुद के ही भीतर

दीवार से झरती पपड़ियों की तरह

धरती के आकार की टाफियां हैं वहां

कि धरती भी तो एक टाफी है आखिर

जो पिघलकर चिपट जाती हैं पैरों से

और हमारे साथ चलती है

दूर दूर तक

बचपन की सब सड़कों पर

एक पेड़ खड़ा है भरा पूरा

अपनी समस्त शाखाओं के साथ

जैसे मैं हूँ

अपने समस्त जीवन का एक दस्तावेज़

लेकिन मेरा बचपन

कहीं नहीं मिलता मुझे

कहाँ खोजूं उसे?

अनुवाद : भावना मिश्रा

शैक्षिक दख़ल

शैक्षिक सरोकारों को समर्पित शिक्षकों तथा नागरिकों का साझा मंच

वर्ष–4, अंक–6, जुलाई 2015

परामर्शदाता मंडल :

विजेन्द्र, प्रेमपाल शर्मा, आकाश सारस्वत, जगदीश जोशी, डॉ0 अरुण कुकसाल, हेमलता तिवारी , डॉ0देवकीनंदन भट्ट, राजीव शर्मा, मनोहर चमोली

संपादक / सह-सम्पादक :

महेश पुनेठा / दिनेश कर्नाटक

सलाहकार संपादक / समन्वय संपादक / प्रबंध संपादक :

डॉ0 महेश बवाड़ी /राजीव जोशी / डॉ0 दिनेश चन्द्र जोशी

संपादक मंडल

रेखा चमोली (उत्तरकाशी), डॉ0दिनेश चंद्र जोशी (हल्द्वानी), विनोद बसेड़ा (सल्ट) प्रदीप बहुगुणा (टिहरी गढ़वाल), राजेश पंत (चंपावत), दिनेश भट्ट (पिथौरागढ़)

कला संपादक/आवरण चित्र/ रेखांकन

मोहन चौहान (देहरादून)/ सरिता थापा, रा.इ.का. टोटानौला (पिथौरागढ़)/ आर. रवीन्द्र/ मनीषा जैन

शैक्षिक दखल टीम :

डॉ0 विवेक पांडेय, जयमाला देवलाल, भुवन चन्द्र पांडे, चितांमणि जोशी (पिथौरागढ़), राजेश वर्मा (हल्द्वानी), शैलेन्द्र धपोला (बागेश्वर), अनुराग (दिल्ली) आशुतोष पांडे (रानीखेत), प्रमोद दीक्षित (बांदा–उत्तरप्रदेश)

संपादकीय संपर्क :

दिनेश कर्नाटक ,ग्राम व पो. रानीबाग
जिला–नैनीताल (उत्तराखंड) 263126
मो.–9411707470, 9411793190, 9411347601
Email-punetha.mahesh@gmail.com,
dineshkarnatak12@gmail.com

प्रकाशक/संपादकीय कार्यालय :

शीला पुनेठा, जोशी भवन, निकट लीड बैंक, पिथौरागढ़ 262501

मुद्रक :

प्रिंटाज प्रिंटिंग प्रेस, सिमलगैर, पिथौरागढ़
सहयोग राशि:
एक प्रति: 40 रुपये पांच प्रति: 200 रुपये,
दस प्रति: 400 रुपये, आजीवन सदस्यता (व्यक्ति): 1500 रुपये
आजीवन सदस्यता (संस्था) : 2000 रूपये,
विशिष्ट सहयोगी: 5000 रुपये

अनुक्रम :

अभिमत		–2
भयमुक्त वातावरण : विचार और ...	–महेश पुनेठा	–5
स्कूली बच्चों में भय तनाव एवं.....	–डॉ0 केवलानंद कांडपाल	–8
शिक्षा और भय	–डॉ0 शशांक शुक्ला	–12
गंभीर खतरे में स्कूल	–रोहित धनकर	–14
कैसा है भय और शिक्षा का रिश्ता	– परिचर्चा	–16
जाग तुझको दूर जाना (कहानी)	–बिपिन कुमार शर्मा	–21
न इधर के रहे, न उधर के	–जावेद उस्मानी	–29
बिन पुस्तक जीवन ऐसा, बिन.....	– आकाश सारस्वत	– 31
भाषा की कक्षा में अभिव्यक्ति.....	–प्रमोद दीक्षित 'मलय'	–32
स्कूल में नाटक	–रेखा चमोली	– 34
हर बच्चे में मुझे अपना बच्चा दिखता है	–रामकिशोर पाण्डेय	–35
सृजनात्मक लेखन के विकास.....	–राजेश उत्साही	– 37
शिक्षक के लिए आवश्यक है	–रमेश चंद्र जोशी	– 38
अपने सपने को जिंदा रखना होगा	–आशुतोष भाकुनी	– 40
बाल मन की पड़ताल	–राहुल देव	– 42
पापा, वे ऐसे लहरा के क्यों चलते हैं ?	–स्वतंत्र मिश्र	– 44
भय के बारे में बच्चे क्या सोचते हैं ?	–बालसंवाद	– 45
विज्ञान से विमुख क्यों हो रहे हैं बच्चे	–डॉ0 दिनेश चंद्र जोशी	– 47
रमेश धारू : एक चलते–फिरते.....	–अर्जुन सिंह	–50
बच्चों की शिक्षा में रूचि रखने.....	–राजीव जोशी	–52
हम किस ओर जाना चाहते हैं ?	–दिनेश कर्नाटक	– 54
आजीवन सदस्य		– 56

सभी पद अवैतनिक। न्याय क्षेत्र पिथौरागढ़। पत्रिका में प्रकाशित लेखकों के विचारों से संपादक एवं संपादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

अभिमत

आपको इस पत्रिका को पढ़ने में आनन्द आयेगा

हर बार मेरे साथ ऐसा ही होता है जितना मैं लिखना चाहता हूं उतना लिख नहीं पाता। कई विचार दिल में ही रह जाते हैं। बाहर निकलने में देर लगा देते हैं। तब तक देर हो जाती है और वे वहीं कैद होकर रह जाते हैं। इस बार भी ऐसा ही कुछ हुआ होगा। 'शैक्षिक दखल' पत्रिका का अंक–5 पढ़ लिया है। जितना आकर्षक पत्रिका का बाहर का आवरण है उससे कई गुना आकर्षक इसके अंदर की सामग्री है। इस सुन्दर चयन के लिए सम्पादकीय टीम को बधाई। साथ ही शिक्षा के सम्बन्ध में लाभदायक और महत्वपूर्ण जानकारी के लिए सभी लेखकों को बधाई। आशा है इस पत्रिका को जन सामान्य की पत्रिका बनने में देर नहीं लगेगी। राजाराम भादू द्वारा शिक्षा और संस्कृति का अंतःसम्बन्ध, आशुतोष उपाध्याय का शिक्षा की बुनियादी शर्त है, लोकतांत्रिकता, प्रो0 राजेन्द्र कुमार का निर्माण में नहीं, रचना में है अध्यापन का सुख, गणेश पाण्डेय का पुरस्कार में सिर्फ एक फूल क्यों नहीं ? शिक्षा और शिक्षक के लिए महत्वपूर्ण आलेख हैं। मुझे लगता है कि हर शिक्षक के लिए इस प्रकार के आलेख पढ़ना जरूरी है। इससे न सिर्फ वे अपने अध्यापन के व्यवसाय में निपुण होंगे, बल्कि छात्रों को समझने, अपने पास–पड़ौस को समझने और शिक्षा के बृहद दृष्टिकोण को जानने में मददगार होंगे। राजाराम भादू ने बहुत ही अच्छे तरीके से शिक्षा और संस्कृति के अन्तर्सम्बन्धों को समझाया है। शिक्षा का आशय मात्र कुछ शब्दों से उलझना नहीं है और न ही कुछ किताबों में बच्चों को उलझाना है। इसके लिए तो छात्र के पास–पड़ौस को समझना, उसकी संस्कृति को जानना भी अनिवार्य है। आशुतोष उपाध्याय ने अपने संक्षिप्त आलेख में शिक्षा के लोकतांत्रिक स्वरूप को समझाया है। उनका कहना है कि इच्छा के विरूद्ध कोई भी कार्य प्रभावकारी नहीं होता है। निर्माण में है अध्यापन का असल सुख, इस बात को मनोवैज्ञानिक तरीके से प्रो0 राजेन्द्र कुमार ने अपने आलेख में स्पष्ट किया है। इसी प्रकार गणेश पाण्डेय जी ने स्पष्ट किया है कि किस प्रकार से कविता लेखन सहज और प्रभावी होता है। उनका कहना है कि कविता पान के पीक की तरह एक बार में बाहर नहीं हो जाती है। समय देना होता है। घुलना होता है। कविता पान की पीक है भी नहीं, वह तो बहुत खास चीज है।

इस प्रकार मैं बहुत विश्वास के साथ कह सकता हूं कि 'शैक्षिक दखल का यह अंक बहुत पठनीय और संग्रह योग्य बना है। यह तो आप इसे पढ़कर ही अन्दाजा लगा सकते हैं। मैं तो केवल उस पर्यटक स्थल का मार्ग बता रहा हूं। वास्तविक आनन्द तो उस स्थल पर जाकर आप स्वयं ले सकते हैं। इसके लिए आपको वहां तक जाना होगा अर्थात इसे पढ़ना होगा। यकीन मानिए आपको वास्तविक आनन्द आयेगा।

– रमेश चंद्र जोशी, समन्वयक,
बी.आर.सी. गंगोलीहाट, पिथौरागढ़।

शिक्षा को बच्चों के मिजाज से देखने की कोशिश

एक अलग तरह के विषय को लेकर छपने वाली इस पत्रिका को पढ़कर सुकून सा मिला। आज के दौर में शिक्षा में बाजारीकरण, भागमभाग, पाठ्यक्रम की प्रधानता और बच्चों को गौण मानकर चलने की प्रवृत्ति देखने में आ रही है। इस पत्रिका में शिक्षा को बच्चों के मिजाज से देखने की कोशिश की गयी है, जिसमें यह पूरी तरह से सफल भी हुयी है। साथ ही यह उम्मीद भी बढ़ाती है कि शिक्षा के क्षेत्र में निश्चित ही दखल देने में कामयाब होगी ।

पत्रिका में महेश चन्द पुनेठा जी का संम्पादकीय गहरे अर्थबोध को लिए हुए शिक्षकों को चिंतन–मनन के लिए प्रेरित तो करता है साथ ही यह संदेश भी प्रदान करता है कि शिक्षकों की एकरसता दूर करने, नई चेतना, नये जीवन बोध का निर्माण और संवेदनशीलता में इजाफा के लिए यात्रा जरूरी है। राजाराम भादू जी का आलेख शिक्षा और संस्कृति के अंतःसंबंधों को बहुत ही गहराई से पड़ताल करते हुए शिक्षकों को इस दिशा में सोचने के लिए विवश करता है। प्रो. राजेन्द्र कुमार जी के व्याख्यान का अंश काफी महत्वपूर्ण है, जिसमें शिक्षकों को मूल विषय के साथ–साथ हर विषय का संक्षिप्त ज्ञान धारण करने का सुझाव देते हुए कहते हैं कि आप निर्माण नही, रचना करें। उनका मानना है कि शिक्षक ज्ञान निर्माण में सहायता करता है इसलिए उसमें संवेदनशीलता आवश्यक है।

अविनाश मिश्र जी का 'अब नहीं दिखते कहीं माट्साहब' शीर्षक से लिखा संस्मरण मन पर अमिट छाप छोड़ देता है। जिस सच्चाई और गहराई के साथ अविनाश जी ने रघुवीर राम जी को याद करते हुए स्वतंत्रता के बाद का सामाजिक चित्र खींचकर, एक नीची मानी जाने वाली जाति के अध्यापक के संघर्ष, उनकी छात्रों के प्रति सदाशयता को रेखांकित किया है वह स्वयं में अतुलनीय है। इसी क्रम में 'घर और स्कूल में ज्यादे फर्क नहीं था' कर्ण सिंह चौहान का गहरे भावबोध को लिए बचपन की एक छोटी सी आत्मकथा है परन्तु यह कथा अनुशासित शिक्षक, विद्यालय का कठोर अनुशासन और उसमें पिसते सामान्य बच्चों की मनःस्थितियों का प्रतिनिधित्व करते हुए यक्ष प्रश्न भी खड़े करती है। पत्रिका में प्रकाशकांत जी एक कहानी भी है 'अमर घर चल'। इसमें लेखक ने घर में बच्चों के प्रति होने वाले अमानुषिक व्यवहार का मुद्दा उठाकर मिलने वाले कष्टों की अतिरंजना तो की है मगर कहानी पाठकों को सोचने के लिए विवश करती है कि बच्चों के प्रति दुर्व्यवहार कहीं से भी उचित नहीं । 'स्कूल की संस्कृति का हमारे जीवन और व्यक्तित्व पर गहरा प्रभाव पड़ता है।' इस मर्म को समझाने का स्तुत्य प्रयास प्रख्यात आलोचक गणेश पाण्डेय जी ने 'पुरस्कार में एक फूल क्यों नहीं ?' के द्वारा अपने संस्मरणात्मक परिसंवाद में सफलता पूर्वक किया है। इसमें उनकी चिन्ता उस वर्ग के लिए है जो पढ़ाई तो पूरी कर लेता है पर शिक्षित नहीं हो पाता है। उन्होंने ऐसे युवाओं को अपने जीवनानुभवों के द्वारा सरल व स्पष्ट शब्दों में स्नेहिल सीख तो दी ही है साथ ही उनको कविता क्यों और कैसे के साथ–साथ उनके सामने कविता की चरम परिणिती के लिए छटपटाते लोगों का हवाला देते हुए एक नैतिक प्रश्न छोड़ दिया है कि पुरस्कार में सिर्फ कलम क्यों नहीं ? सिर्फ एक फूल क्यों नहीं ?सिर्फ पाठक का प्यार क्यों नहीं?

'नैतिकता पढ़कर नही, देखकर सीखी जाती है।' पर सुन्दर व सार्थक परिचर्चा करते हुए सुधीजनों की महत्वपूर्ण राय स्वयं में एक अलग

विधा ही बन पड़ी है। आशुतोष उपाध्याय ने अपने छोटे से लेख 'शिक्षा की बुनियादी शर्त है लोकतांत्रिकता' में बड़ी बात कही है कि बच्चों की सीखने की जगहों को चाहें वे घर हों या विद्यालय उन्हें लोकतांत्रिक बनाना अनिवार्य है। 'वंचित वर्ग के विद्यार्थियों के लिए शिक्षा की चुनौतियां' में प्रो.जे. के. जोशी ने संसाधनों की कमी का उल्लेख करते हुए कई प्रश्न उठायें हैं। डा. इसपाक अली 'उच्च शिक्षा : दशा और दिशा' में अपनी चिन्ता व्यक्त करने में पूरी तरह सफल रहे हैं। हेमचन्द्र पाठक जी ने 'मेरी शिक्षण यात्रा' में बच्चों की पड़ताल को अपने सार्थक अनुभवों द्वारा पठनीय बनाया है। जयमाला देवलाल की 'एक छोटी सी कोशिश' मन को छू जाती है। पत्रिका में तीन कविताएं भी हैं जो बालकों से सम्बन्धित होकर भी हमें शैक्षिक सरोकार से रूबरू कराती हैं। कुल मिलाकर यह अंक सामाजिक, शैक्षिक और शिक्षक छात्रों के संबंधों पर प्रकाश डालते हुए समुचित मार्गदर्शन करता है। पत्रिका के मुख्य और अन्य आवरण पृष्ठों पर बने कुंवर रविन्द्र जी के चित्र सुन्दर बने हैं जो इसकी गरिमा को और भी बढ़ा रहे हैं।

– समीर कुमार पाण्डेय,
बेहट, सहारनपुर।

इस पत्रिका को सकारात्मक सोच के साथ देखें

हमेशा की तरह इस अंक के भी दोनों संपादकीय चिंतन–मनन को प्रेरित करते हैं। राजाराम भादू का आलेख शिक्षा और संस्कृति के अंतःसंबंध की गहन पड़ताल करता है। यह आलेख बेहद जरूरी भी था। आज जिस तरह शिक्षा का बाजारीकरण हो गया है और हम जिस तरह से शिक्षा को वैभव के लिए औजार के तौर पर देखते हैं, इससे किसी का भला नहीं होने वाला है। अब परिचर्चा स्थाई स्तंभ हो चली है। इसे फेसबुक के माध्यम से आगे बढ़ाया जाता है। लेकिन मुझे लगता है, इस परिचर्चा को पत्रिका में देने से पूर्व संपादित कर लेना चाहिए। यह सभी पाठकों में उतनी रोचकता नहीं दे पाती। कई बार साथियों की टिप्पणियां हलकी और सतही भी हो जाती हैं। यदि सभी को देना महती है तो ध्यान रखा जाए कि यह अधिकतम दो पेज में सिमट जाए। यह समय की मांग भी है। कर्ण सिंह का संस्मरण कई सवाल छोड़ता है और कई अवसरों पर हम सभी को अपने–अपने बचपन की ओर ले जाता है। यह बेहद जरूरी है। कम से कम शिक्षक और पत्रिका के नियमित लेखक अपना बचपन याद करें और उसे संस्मरण के तौर पर यहां जरूर उपलब्ध कराएं।

आशुतोष उपाध्याय का महत्वपूर्ण और गंभीर आलेख पत्रिका में मौजूद है। शिक्षा की बुनियादी बातों को वह करीने से अपने आलेख में सहेजते हैं। वह कल आज और कल तक में अपनी विहंगम दृष्टि भी डालते हैं। एक वैज्ञानिक नजरिया इस आलेख में दिखाई देता है। प्रकाशकांत की कहानी 'अमर घर चल' हर शिक्षक के लिए जरूरी है। अभिभावक के लिए भी। हम अच्छी तरह से जानते और मानते हैं कि बच्चे का मन–मस्तिष्क पूर्ण विकसित होता है। लेकिन फिर भी हम उसे बोदा मानकर ट्रीट करते हैं। क्या यह सही है ? आज बाल मनोविज्ञान के सभी पहलुओं के हिसाब से बच्चे की परवरिश होनी चाहिए। यह हर कोई मानता है। लेकिन क्या हम उस पर अमल करते हैं ? क्या कई बार बच्चों के साथ बात करने के दौरान हमारा लहजा सतही नहीं होता ? यह कहानी एक साथ कई सारे अंत के द्वार तक ले जाकर छोड़ देती है। वाह ! बातचीत और आम लहजे में प्रो0 राजेन्द्र कुमार का आलेख उनके अनुभव से उपजा है। यह वैश्विक नजरिए से लेकर भारतीय और फिर पढ़ते–पढ़ते हमें स्थानीय परिवेश तक ले जाता है। शिक्षा के उद्देश्यों के साथ–साथ यह आलेख भाषाई महत्व पर चर्चा करता है।

वंचित वर्ग के विद्यार्थियों के लिए शिक्षा की चुनौतियां पर प्रो0 जी0के0 जोशी का आलेख बहुत सारे संदर्भो के साथ प्रश्न उठाने पर भी बात करता है। वह इस बात पर भी इशारा करते हैं कि आज भी शिक्षकों को वे जरूरी संसाधन मुहैया नहीं हैं जिनके चलते वह अपने शिक्षण को प्रभावी और बालपयोगी बना सकें। डॉ0 इसपाक अली का आलेख उच्च शिक्षा की दयनीयता पर बात करता है। आखिर हम शिक्षा के प्रति इतने उदासीन क्यों हैं ? यह हम अपनी सरकार से कब पूछेंगे ? मेरी शिक्षण यात्रा में शिक्षक हेम चन्द्र पाठक का संस्मरण है। यह बेहद पठनीय बन पड़ा है। हम बड़े और खासकर शिक्षक किसी भी क्षेत्र में जाकर या स्कूल में जाकर पहले ही दिन बच्चों की पड़ताल कर लेते हैं। एक ही झटके में हम इस निष्कर्ष पर कैसे पहुंच जाते हैं कि इतने बच्चों का अधिगम स्तर न्यून है। क्या हम बड़े अपने साथ एक बनावटी मूल्यांकन का टूल नहीं लेकर जाते ? क्या हम हर जगह सकारात्मकता से अधिक नकारात्मकता नहीं खोजते ? मैं खुद इस रवैये से अपने आप से नाराज हूं। मैं शैक्षिक दखल परिवार से उम्मीद करूंगा कि भविष्य में ऐसे आलेखों का स्वागत भी करें जो बच्चों की खूबियों को उकेरें। अपने शैक्षणिक अनुभवों में बच्चों की ऊर्जाओं को भी रेखांकित करें। यह आलेख इसलिए भी जरूरी लगता है कि इसमें पाठक जी ने अपने अनुभवों के आधार पर शिक्षण को प्रभावी बनाने के कारगर तरीके खोजें हैं और उन्हें हम सबके लिए यहां रखा है।

अविनाश मिश्र का संस्मरण बेहद भाया। अब नहीं दिखते कहीं भी वे माट्साहब। वाकई। कल के मास्साब और आज के मास्साबों में क्यों कर उनके आचरण–व्यवहार में अंतर आ गया है ? यह सोचने का विषय है। इस पर व्यापक विमर्श की आवश्यकता है। डायरी विधा जयमाला देवलाल की रोचक लगी। बस कुछ दिन ! यह डायरी अतीत में झांकने और बीते कल हमारी क्या मनस्थिति थी, की साक्षात् गवाह बनती है। प्रख्यात आलोचक गणेश पाण्डेय का अति महत्वपूर्ण आलेख पुरस्कार में सिर्फ एक फूल क्यों नहीं ? मजा आ गया। लेकिन एक फूल क्यों ? हम क्यों फूल–पत्तों को उनकी जीवन धारा से अलग करें ? कुछ और भी हो सकता है। लेकिन यह आलेख केवल स्कूल की भूमिका पर ही रोशनी नहीं डालता है वरन यह हमारे बोध का विकास भी करता है। बार–बार पढ़ने पर यह हमारा खुद का मूल्यांकन करने का अवसर भी देता है।

कुल मिलाकर यह अंक मजेदार बन पड़ा है। कुछ साथी कहते हैं कि यह बौद्धिकता दिखाने की पत्रिका हो गई है। मैं उनसे कहना चाहता हूं कि मित्रो हर पहलू को सकारात्मक दृष्टि से देखें। हमें क्या पढ़ी–पढ़ाई हुई सामग्री को पढ़ने की आदत तो नहीं हो गई ? क्यों हम नए दृष्टिकोण को पढ़ना नहीं चाहते ? यदि हम पढ़ना ही नहीं चाहते तो लिखेंगे क्या ? लिखना नहीं चाहते तो बदलेंगे क्या ? समझेंगे क्या और अंत में समझाएंगे क्या ?

बताता चलूं कि शैक्षिक दखल अभी साल में दो अंक निकाल रही है। यह अंक वर्ष 4 का 5 वां अंक है। इस बार आवरण किसी व्यावसायिक पत्रिका से कम नहीं है। यह काफी देर तलक खुद पर निगाह रखने के लिए बाध्य करता है। पीछे के आवरण पर कुंवर रविन्द्र का बना चित्र तो और उस पर बर्टोल्ट ब्रेख्त की मननीय कविता और भी महत्वपूर्ण है। इस अंक को पिछले अनुभवों से सबक लेते हुए संपादकीय टीम ने संवारा है। पेज सेटिंग, तीन–तीन कॉलमों में सामग्री को सहेजना भा गया। कागज भी उम्दा लगा है जो इसे लंबे समय तक सहेजने में मदद करेगा। दोनों आवरणों के अंदरदिनेश कुशवाह और विनोद दास तथा तालाब में पत्थर फेंकता बच्चा

रमण कुमार सिंह की कविता इसे वाकई में शैक्षिक सरोकारों को समर्पित शिक्षकों तथा नागरिकों का साझा मंच बनाते हैं।

– मनोहर चमोली मनु,
पौड़ी गढ़वाल।

यह पत्रिका अधिक से अधिक मित्रों तक पहुंचे

'शैक्षिक दखल' एक आवश्यक और प्रभावित करने वाली पत्रिका है, जो हमारे तमाम पूर्वाग्रहों को दूर करती है। मैंने इस पत्रिका के माध्यम से बहुत से शिक्षक मित्रों के विचारों में परिवर्तन होते देखा है। जब लोगों से बात की जाएगी, संवाद स्थापित किया जाएगा तो निश्चय ही सार्थक बदलाव देखने को मिलेगा। इसलिए आवश्यक है कि यह पत्रिका अधिक से अधिक मित्रों तक पहुंचे और उसके लिए हम सभी को प्रयास करना होगा। पत्रिका के सभी अंक महत्वपूर्ण हैं। इसलिए यदि कभी सभी अंकों के महत्वपूर्ण अंश को संपादित कर एक अलग अंक निकाला जाए तो नये पाठकों के साथ सभी को लाभ होगा। यह संपादन किसी पाठक से कराया जाए। नये अंक के लिए बहुत सारी शुभकामनाएं ।

–श्याम गोपाल गुप्त,
बुढ़ाना मुजफ्फर नगर।

भेड़ियाधसान से अलग एक पत्रिका

मैं इस पत्रिका के दो अंक पढ़ कर ही आश्वस्त हूं कि हिंदी पत्रिकाओं की भेड़ियाधसान से अलग यह पत्रिका शिक्षा से जुड़े संवेदनशील मुद्दों को तार्किक ढंग से उठा रही है। वर्तमान अंक में कर्ण सिंह चौहान का लेख मुझे और मेरे साथी शिक्षकों को भी काफी पसंद आया। कवर और उसकी कविताएं भी। एक अनुरोध है आपसे। अगर संभव हो तो ट्यूशन की समस्या पर कोई लेख या विशेषांक निकालिए।

–नीलांबुज सिंह,
केंद्रीय विद्यालय कंचनपारा,
24 परगना, पं0 बंगाल।

अंक अब तक के अंकों में सर्वश्रेष्ठ

जब से मैंने अपने विषय में सोचना शुरू किया कि क्या करना है, मन से एक ही जवाब मिला शिक्षण। अपने अंदर कई कमजोरियों को पाने के बावजूद एक शिक्षक बनने की अभिलाषा मन में मजबूत होती रही। शिक्षक मतलब अच्छा शिक्षक। मुझे खुशी है कि अच्छा शिक्षक बनने की दिशा में मेरी मदद करने के लिए 'शैक्षिक–दखल' सामने आया है। निश्चित ही 'शैक्षिक–दखल' उन कम पत्रिकाओं में है, जो व्यक्ति को सही प्रेरणा दे रही हैं। 'शैक्षिक दखल' का पांचवां अंक यद्यपि बहुत देर से मिला, तथापि अंक से रू–ब–रू होने के बाद तुरंत ही अहसास हो गया कि इंतजार सफल रहा। सबसे पहले तो इसके लिए धन्यवाद दूंगा कि डाक–विभाग की अव्यवस्थाओं के बीच भी आपने मेरे लिए यह अंक शायद तीसरी बार भेजने का कष्ट उठाया। निश्चित तौर पर यह अंक अब तक के अंकों में सर्वश्रेष्ठ है। शुरुआती कविताओं से लेकर अंत तक सभी सामग्री पठनीय है। आपने शिक्षा के क्षेत्र में यात्राओं के महत्त्व को स्पष्ट किया है तो दिनेश कर्नाटक जी ने दंड की नीति की अच्छी आलोचना की है। उनका आलेख अंदर के अन्य आलेखों से तो जुड़ता ही है, साथ ही प्रकाशकांत की मार्मिक और बहुत अच्छी कहानी 'अमर घर चल' को भी स्पष्ट करता है। यह कहानी मन पर जबर्दस्त प्रभाव डालती है। सत्यनारायण पटेल जी ने इसके सांकेतिक पक्ष को भी सामने ला दिया है। इन सब के बीच मुझे जिस आलेख ने सबसे अधिक प्रभावित किया वह राजा राम भादू जी का है। इसे दो बार पढ़ गया हूं। साथ ही प्रो.राजेंद्र कुमार और जे. के. जोशी जी के व्याख्यान–अंश भी इस अंक का बहुत जरूरी भाग है। कर्ण सिंह चौहान के आलेख में सिर्फ नकार खला, लेकिन इस सच्चाई से मुंह नहीं चुराया जा सकता। गणेश पाण्डेय सर की खरी–खरी सटीक है, तो परिचर्चा हमेशा की तरह उद्वेलित करनेवाली। इतनी अच्छी सामग्री के लिए पूरी टीम को साधुवाद। पत्रिका संग्रहनीय बन पड़ी है। और हां, इस बार कागज भी अच्छा दिया है। आगे के लिए शुभकामनाएं। आपका–

– अस्मुरारी नंदन मिश्र,
रायगड़ा, उड़ीसा।

लंबी हो यह यात्रा

'शैक्षिक दखल' का जनवरी' 15 अंक मिला, धन्यवाद। शिक्षा को लेकर भी कितनी विविधतापूर्ण सामग्री संजोई जा सकती है, यह देख रहा हूं। आशा करता हूं, यह यात्रा दीर्घायु और समृद्ध होगी।

–पल्लव, संपादक,
बनास जन, दिल्ली।

सभी संसाधनों से पूर्ण हों स्कूल !

मेरा मानना है कि राज्य के प्रत्येक संकुल केन्द्र में दो या तीन स्कूलों को चाक–चौबंद कर जीप या गाड़ी से विद्यार्थियों के आने–जाने की व्यवस्था की जानी चाहिए। प्रत्येक स्कूल की प्रत्येक कक्षा के लिए एक अध्यापक होना जरूरी है। प्रधानाध्यापक को मिलाकर यह संख्या 6 होनी चाहिए। मैं पहली कक्षा से संस्कृत प्रारंभ किए जाने के पक्ष में नहीं हूं। मेरा स्पष्ट मानना है कि एकल अध्यापक की व्यवस्था के बजाय स्कूल को बंद करना ही बेहतर होगा। एकल अध्यापक की व्यथा को इस चुटकुले में बेहतर तरीके से व्यक्त किया गया है–'तीन लोग स्वर्ग के दरवाजे पर खड़े थे–पुजारी, डॉक्टर और टीचर। भगवान बोले, 'स्वर्ग में सिर्फ एक ही सीट खाली है ! तुम में से किस को जगह दें ?'

पुजारी बोला–'मैंने सारी उम्र आपका गुणगान किया है। लोगों में आपके प्रति आस्था पैदा की है।'

डॉक्टर बोला–'मैंने सारी उम्र लोगों को बीमारियों से बचाया है। आप ही तो कहते हैं। दीन–दुखियों की सेवा ही तो सबसे बड़ी पूजा है !'

शिक्षक बोला–'मैं अपने स्कूल में अकेला टीचर था। मैंने न सिर्फ अकेले बच्चों को पढ़ाया, बल्कि पढ़ाने के साथ जनगणना, बी,एल.ओ., पल्स पोलियो, चुनाव, प्रशिक्षण, मिड डे मील, बोर्ड परीक्षा, नोडल पोस्टमैन, एस. एम.सी. सचिव, बिल्डिंग का रख–रखाव कार्य, एकाउन्टैंट, पशु गणना, कई तरह की रैलियां.....'

भगवान ने शिक्षक को बीच में ही टोका–'बस कर वत्स.....अब रुलायेगा क्या ?'

–अरुण बहुखंडी 'अंजाना',
रा0प्रा0वि0 बंठोली (एकेश्वर),
जिला–पौड़ी गढ़वाल।